

संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता

डॉ. काना राम रैगर

सहायक क्षेत्रीय निदेशक इग्नू
क्षेत्रीय केंद्र अहमदाबाद, गुजरात

संस्कृतं संस्कृता भाषा संस्कृतेरुपयुज्यते।
प्रख्याता देववाणीति नित्यं विश्वे विराजते ॥1

"संस्कृत विश्व की सर्वप्राचीन भाषा है"- इस कथन की सत्यता में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। वाग्देवता का अनुपम प्रसाद है संस्कृत। इसीलिए हम श्रद्धावश इसे 'देववाणी' की संज्ञा से विभूषित करते हैं। काव्यादर्श में आचार्य दण्डी ने कहा है-

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः ॥2

संस्कृत का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद की ऋचाओं में प्राप्त होता है। उस काल में इस देवभाषा को 'संस्कृत' कहते थे या नहीं, इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सम्भवतः वेदाङ्गों में परिगणित निरुक्त और व्याकरण के माध्यम से देवभाषा का परिष्कार किये जाने के पश्चात् इसकी संज्ञा 'संस्कृत' वैदिक संहिताओं की श्रुति के पश्चात् हुई होगी। देववाणी के रूप में महर्षियों ने जिस भाषा को 'अन्वाख्यात' किया वही 'भाषा 'संस्कृत' के रूप में लोकविश्रुत हुई। शब्दों (जो लोकव्यवहार में थे, विशेषतः वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त) की 'निरुक्ति' और 'व्याकृति' (व्युत्पत्ति) का प्रयोग निरुक्तों और वैयाकरणों के द्वारा होने लगा। इस प्रकार, स्वतः प्रवृत्त देवभाषा के स्वरूप के 'नियमन' के प्रयास प्रारम्भ हुए। महर्षि पाणिनि ने अध्यवसायपूर्वक सूत्रों की रचना करके देवभाषा को 'संस्कृत' रूप प्रदान किया। महर्षि पाणिनि रचित 'अष्टाध्यायी' को 'जगन्माता' कहने के मूल में यही रहस्य है। संस्कृत के परिनिष्ठित स्वरूप के कारण ही हम उसे एक पूर्ण वैज्ञानिक भाषा (A most Scientific Language) कहते हैं।

हम तो आर्य परम्परा से ही संस्कृत के इस वैज्ञानिक स्वरूप को देखते आ रहे हैं किन्तु पाश्चात्य भाषाविदों ने जब संस्कृत का यह स्वरूप देखा, जाना और पहचाना तो वे अत्यन्त विस्मित हुए। सर विलियम जोन्स ने अपने एक व्याख्यान में संस्कृत की विशेषताओं से अभिभूत होकर कहा कि- 'संस्कृत भाषा की संरचना अद्भुत है। यह ग्रीक भाषा से अधिक पूर्ण और लैटिन भाषा की अपेक्षा कहीं बहुत अधिक विपुल (व्यापक) है। संस्कृत, यूरोप की इन दोनों ही समृद्ध भाषाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट रूप से परिष्कृत भी है।' निःसन्देह, संस्कृत भाषा अपनी अद्भुत संरचना और उत्कृष्ट परिष्कृत स्वरूप के कारण ही 'अमरभाषा' के गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित है। 3

संस्कृत की वैज्ञानिकता सिद्ध करने के लिए हमें बाह्य प्रमाणों का आश्रय लेने की आवश्यकता एकदम नहीं है। उसका स्वतः प्रामाण्य ही उसकी वैज्ञानिकता सिद्ध करने हेतु पर्याप्त है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम हम संस्कृत की संरचनागत वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में विचार करते हैं। यद्यपि यह विषय अत्यन्त व्यापक है और भाषाविज्ञान में ध्वनिविज्ञान, पदरचनाविज्ञान, अर्थविज्ञान और वाक्यविज्ञान के अन्तर्गत सैद्धान्तिक रूप से विषय का विस्तृत उपस्थापना किया गया है किन्तु यहाँ हम संक्षेपतः इस सम्बन्ध में सामान्य विचार ही प्रस्तुत करेंगे।

भाषा की सबसे छोटी इकाई 'वर्ण' है जिसे हम अक्षर भी कहते हैं। यह वर्ण स्वतन्त्र रूप से 'पद' (शब्द) भी हो सकता है किन्तु वर्णों का सार्थक समूह 'पद' और पदों का सार्थक समूह 'वाक्य' होता है। इन्हीं वाक्यों से भाषा बनती है। पदों का निर्माण प्रकृति-प्रत्यय-पूर्वक होता है। नियम है- 'न केवलं प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न केवलं प्रत्ययः। इसलिए 'पद' को कहा-

"सुप्तिङन्तं पदम्" अर्थात् सुबन्त और तिङन्त विभक्तियों से युक्त 'पद' होता है।⁴ संस्कृत एक योगात्मक भाषा है। अतः प्रातिपदिकों और धातुओं में ये प्रत्यय अभिन्न रूप से संयुक्त होते हैं। इसका लाभ यह है कि वाक्य में इनका प्रयोग किसी भी स्थान पर किया जा सकता है और अर्थ प्रायः अपरिवर्तित रहता है। उदाहरण के लिए हम एक वाक्य लेते हैं- 'रामः पुस्तकं पठति।' इसे हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं- 'रामः पठति पुस्तकम्' अथवा, 'पुस्तकं रामः पठति' अथवा 'पुस्तकं पठति रामः' अथवा 'पठति पुस्तकं रामः' अथवा 'पठति रामः पुस्तकम्।' तीन पदों से बने हुए इन सभी वाक्यों में अर्थ एक जैसा है। वाक्य में प्रयुक्त पदों की संख्या के अनुपात में वाक्य-संरचना-प्रकारता भी बढ़ती जायेगी। इन पदों से व्यक्त होने वाले पदार्थ के ज्ञान के लिए निर्दिष्ट 'सङ्केतग्रह' की प्रक्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक है। बिना सङ्केतग्रह के किसी भी शब्द का अर्थज्ञान असम्भव है। पदों से वाक्य बनते हैं। ऊपर एक वाक्य का उदाहरण दिया गया है। वाक्य रचना का भी एक विज्ञान है। वाक्य रचना के बारे में मीमांसाकारों ने परिभाषा का पहला उल्लेख करते हुए कहा है -

तेषां वाक्यं निराकाङ्क्षम् मिथः सम्बन्धम् | 5

वाक्य वह है जो निराकाङ्क्ष (निराकाङ्क्षम्) हो, अर्थात् 'ऐसा कुछ जिसे अपना अर्थ पूरा करने के लिए अपने से बाहर के शब्दों की अपेक्षा न करनी पड़े।' इसे वाक्य में शब्द-अर्थों के बीच मिथः सम्बन्ध या 'पारस्परिक सम्बन्ध' के रूप में समझाया गया।

साहित्यदर्पणकार ने वाक्य के विषय में कहा है कि-

वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः | 6

वाक्य में प्रयुक्त पदों में परस्पर 'आकाङ्क्षा' होनी चाहिए, अपने अर्थ को व्यक्त करने की 'योग्यता' होनी चाहिए तथा उनमें परस्पर 'आसत्ति' या 'सन्निधि' होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो उसे वाक्य नहीं माना जायेगा। उदाहरण है- 'अग्निना सिञ्चति।' व्याकरण की दृष्टि से इसमें वाक्यगत कोई त्रुटि नहीं है किन्तु इसे वाक्य नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें प्रयुक्त पदों में परस्पर आकाङ्क्षा और सन्निधि तो है किन्तु अर्थ-योग्यता नहीं है। अतः यह वाक्य नहीं है।

पदरचना विज्ञान के अनुसार, संस्कृत के प्रत्येक शब्द के मूल में 'धातु' होती है। उस धातु का जो अर्थ होता है, वह शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में सन्निहित रहता है। उदाहरणार्थ- 'रामः' शब्द की व्युत्पत्ति है- 'रम्+घञ्। रमन्ते योगिनो यत्र सर्वाणि नामानि आख्यातजानि (सारे नाम धातुज हैं)।⁷

भिन्न-भिन्न प्रत्ययों के योग से एक ही धातु से अनेक शब्द बनाये जाते हैं। ये प्रत्यय धातु के बाद लगते हैं। प्रत्यय- भिन्नता से निर्मित शब्दों के अर्थ भी भिन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार, उपसर्गों के योग से एक ही धातु भिन्न-भिन्न अर्थ देने लगती है। संस्कृतभाषा की यह विज्ञानमयी विशेषता है कि एक ही धातु से अलग-अलग प्रत्ययों और उपसर्गों का विधान करके अनेक सार्थक शब्द बनाये जा सकते हैं-

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।

विहाराहारसंहार प्रहार परिहारवत् ।।८

संस्कृत शब्दों की निष्पत्ति भी कम रोचक और वैज्ञानिक नहीं है। किस आधार पर है इन शब्दों की वर्णदिशना सङ्घटित हुई यह जानना अत्यन्त विस्मयकारी है। 'पानी' अथवा 'जल' से मनुष्य ही क्या पशु-पक्षी भी परिचित हैं। यह एक ऐसा पदार्थ (द्रव्य) है जो वाष्प, द्रव और ठोस तीनों अवस्थाओं में रहता है किन्तु तीनों ही दशाओं में इस द्रव की मूल संरचना एक ही है। रसायन विज्ञान में उसे 'H₂O' कहते हैं। हाइड्रोजन जब आक्सीजन के साथ मिलकर जलता है तब 'H₂O' उत्पन्न होता है। अब 'जल' की निष्पत्ति की वैज्ञानिकता दर्शनीय है-

'ज्वलनाज्जलमिति।' इसी प्रकार, 'पातुं योग्यत्वात्पानीयमिति ।'

महर्षि पाणिनि ने जिन सूत्रों की रचना करके संस्कृत के विकास को वर्तमान स्वरूप में नियमित किया और लोक में भाषा के शब्दों का साधुत्व प्रतिपादित किया, उसकी अर्थात् पाणिनीय व्याकरण की वैज्ञानिकता तो सार्वभौम रूप से आश्चर्यप्रद है। भाषावैज्ञानिकों का यह मानना है कि सम्प्रति विश्व की सभी भाषाओं पर यह पाणिनीय व्याकरण लागू होता है। इसीलिए पाणिनीय व्याकरण के नियमों से आबद्ध, परिमार्जित और परिपुष्ट संस्कृत भाषा विश्व की एकमात्र वैज्ञानिक भाषा है। विज्ञानियों का यह मानना है कि कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा एकमात्र संस्कृत ही है। इस भाषा की प्रशस्ति सभी मुक्तकण्ठ से करते हैं। पाणिनि द्वारा प्रवर्तित ध्वन्यात्मक चतुर्दश (महेश्वर) सूत्र वर्णसमाम्नाय की रचना करते हैं और इन सूत्रों से विनिर्मित 'प्रत्याहार' पाणिनीय व्याकरण की संरचना के आधार हैं। अष्टाध्यायी की प्रबन्धकता अत्यन्त वैज्ञानिक है। पूर्व सूत्रों की अनुवृत्ति करते हुए आगे सूत्रों का व्याख्यान सहजतः हो जाता है। पाणिनि के सूत्रानुक्रम का पालन करने वाले को कण्ठस्थ (रटना) करने जैसे जटिल श्रम-कर्म की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक छोटा सा निदर्शन इस बात को स्पष्ट कर देगा। संस्कृत में परिगणित धातुओं की रूप रचना के लिए दस 'लकार' नियत हैं। 'लेट्' लकार वेदों में ही है। ये लकार हैं- लट्, लिट्, लुट्, लृट् (लेट्), लोट् और लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्। 'लिङ्' के दो भेद हैं- विधिलिङ् और आशीर्लिङ्। माहेश्वर सूत्रों में प्रारम्भ के तीन सूत्र ले लीजिए- 'अइउण्। ऋलक्। ए ओङ्।' लकार के 'ल' की योजना इनके साथ कीजिए और अन्तिम वर्ण क्रमशः 'ट्' तथा 'ड' को रखिए। इन सभी लकारों के नाम अनायास बनते चले जायेंगे।

इसी तरह आप जानेगे तो महेश्वर सूत्रों की वैज्ञानिकता स्वतः सिद्ध है। प्रथम चार सूत्र में स्वर वर्णों का परिचय, पांच से चौदह सूत्र तक व्यंजन वर्ण क्रमानुसार पहले पंचम, चुतर्थ, तृतीया, दिवतीया, प्रथम और अंतःस्थ एवं उष्म वर्णों का उल्लेख मिलता है, ऐसा सटीक उल्लेख किसी भी भाषा के व्याकरण में प्राप्त नहीं होता है।

संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता अपने-आप में अत्यन्त अद्भुत है। इसकी संरचना, इसका स्वरूप और इसका व्याकरण तो वैज्ञानिक है ही, इसके अन्दर- बाहर विज्ञान ही विज्ञान है। विज्ञान का जो रूप आप इसमें पाना चाहें, वह सब आपको मिल जायेगा। संस्कृत वाङ्मय की यह स्पष्ट घोषणा है-

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।९

अर्थात्, तुम्हें विज्ञान सहित वह सबकुछ ज्ञान बतलाऊँगा, जिसे जानने के पश्चात् इस संसार में अन्य कुछ भी जानने के लिए बाकी नहीं बचता। क्या नहीं है संस्कृत वाङ्मय में! लौकिक अलौकिक सारा विज्ञान भरा हुआ है इसमें। इस आलेख का समापन करते हुए संस्कृत की वैज्ञानिकता की एक बात और-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥10**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥**

अर्थात्, वह भी पूर्ण है, यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण ही निरन्तर निकाला जा रहा है। फिर भी पूर्ण का पूर्ण (पूरे का पूरा) ले लेने पर भी पूर्ण ही बचा रहता है।

है न अद्भुत विज्ञान ! यह अलौकिक विज्ञान है। सामान्य जन इसे एक मजाक ही समझेंगे। पूरे से पूरा निकाल लो तो भी पूरा ही बचा रहता है। भौतिकतावादी इसे सर्वथा असत्य ही मानेंगे। ठीक भी है; लोक व्यवहार में तो ऐसा असम्भव है। इस मन्त्र (शान्ति पाठ) का आध्यात्मिक अभिप्राय चाहे जो भी हो किन्तु यह है अक्षरब्रह्म का प्रतिपादक। न क्षरतीति अक्षरोऽक्षरं वा। जिसका क्षरण न हो वह है अक्षर।**11**

वर्णमाला का कोई भी अक्षर ले लीजिए अथवा कोई भी संख्या 1,2, 9,0; ले लीजिए। सोचिए कि आज तक इनका कितनी बार प्रयोग हो चुका। 'अ' या 'A' अथवा '१' या '1' कितने समय से, कहाँ-कहाँ, कितनी बार लिखे जा चुके और अब भी लिखे जा रहे हैं। क्या ये समाप्त हो गये, चुक गये, बाकी नहीं बचे? अब शून्य (0) और अनन्त (∞) को लीजिए। इनका यथार्थ मान क्या अब तक किसी ने जाना ? विज्ञान देखिए $0-0 = 0$; $8-8=0$ । और अनन्त: यही कहूँगा कि 'शान्ति' का विज्ञान जैसा संस्कृत में है, तीनों लोकों में वैसा किसी अन्य किसी भाषा में नहीं है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. शर्मा, प्रो योगेश्वरदत्त, नाग पब्लिशर्स, 1970, काव्यादर्श; पृष्ठ सं. 5
2. शर्मा, प्रो योगेश्वरदत्त, नाग पब्लिशर्स, 1970, काव्यादर्श; 1/33
3. एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, तृतीय वार्षिक व्याख्यानमाला, 2 फरवरी, 1786 ई.
4. मिश्र, डॉ आद्याप्रसाद, अक्षयवट प्रकाशन, प्रयागराज, 1995 लघुसिद्धान्त कौमुदी, संज्ञा प्रकरणम - 1/4/14
5. कात्यायन श्रौत सूत्र, पृष्ठ सं. 210
6. मिश्र, डॉ. राजेंद्र, अक्षयवट प्रकाशन, प्रयागराज, 1990, साहित्यदर्पणम - 2/16
7. शर्मा, डॉ उमाशंकर, हंसा प्रकाशन, जयपुर, २००५ आचार्य यास्क- निरुक्त, सामान्य परिचय, पंचम, पृष्ठ सं. 25
8. झा, पं रामचंद्र, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २००२, सिद्धान्तकौमुदी, भवादीगण प्रकरणम, पृष्ठ सं. 160
9. दास, स्वामी रामसुख, गीताप्रेस गोरखपुर, 1995, श्रीमद्भगवद्गीता, 7/2.
10. **सुरेश्वराचार्य**, गीताप्रेस गोरखपुर, 1995 बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय पंचम, पृष्ठ सं. 230
11. शर्मा, डॉ उमाशंकर, हंसा प्रकाशन, जयपुर, २००५ आचार्य यास्क- निरुक्त, सामान्य परिचय, पंचम, पृष्ठ सं. 10